'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ६७ } वाराणसी, शनिवार, ६ जून, १९५९ { पचीस रुपया वार्षिक

शिक्षकों के बीच

पठानकोट (पंजाब) २०-५-'५९

यदि शिक्षक सेवा का व्रत लेकर काम करें तो शिक्षा का वास्तविक लाभ मिल सकता है

मानव-समाज अनेक विभागों में बँटा हुआ है। दुनिया के हर प्रदेश में मानव रहता है और अपने ढंग से विचारों का विकास करता है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से मनुष्य रह रहा है। हमारे यहाँ जीवन के कुछ विचारों का विकास हुआ है, कुछ विचारों का विकास दुनिया के दूसरे देशों में हुआ है। हर देश में अपने-अपने ढंग से मनुष्य सोचता है और अपने ही ढंग से चिंतन का पथ प्रशस्त करता है, इसलिए सब की चिंतन की दिशा अलग-अलग होती है।

भारत और पश्चिम

इन दिनों पश्चिम में आधुनिक विज्ञान का विकास हो रहा है। हमारे यहाँ पहले विज्ञान था, लेकिन बीच के जमाने में हम कुछ ढीले पड़ गये, इसलिए विज्ञान का विकास नहीं हो सका, यह हमारी बहुत बड़ी कमी है। हिन्दुस्तान पर बाहर से जितने हमले हुए और हम हारे, उसका सबसे बड़ा कारण एक यह भी है कि हम विज्ञान में पिछड़े हुए हैं। आज हिन्दुस्तान में जो दारिद्र्य है, उसके अनेक कारणों में से एक कारण विज्ञान में पिछड़ना ही है। यदि हमें समग्र दृष्टि से तरक्की करनी है तो अब पश्चिम से विज्ञान लेना होगा।

हमें हर चीज पश्चिम से सीखनी होगी, ऐसी बात नहीं है। कई चीजें ऐसी हैं, जिनमें हम पश्चिम से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। तालीम की ही बात लीजिए। हम उस क्षेत्र में पश्चिम से बहुत आगे हैं। इतिहासकार संशोधन करके अगर बतायें तो वे भी यही कहेंगे कि जिन देशों में तालीम के बारे में सर्वप्रथम गंभीरता से विचार हुआ है, उनमें हिन्दुस्तान सबसे आगे है। तालीम का विचार हिन्दुस्तान का अपना विचार है।

वर्ण और आश्रम का भेद

हमारे यहाँ अक्सर वर्णाश्रम-व्यवस्था की बात की जाती है, लेकिन लोग नहीं समझते कि वर्ण अलग हैं और आश्रम अलग है। जहाँ वर्ण-व्यवस्था हो, वहाँ आश्रम-व्यवस्था हो ही, यह कोई जरूरी नहीं है। वर्ण-व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था है और आश्रम-व्यवस्था तालीम की व्यवस्था है। वर्ण-व्यवस्था में तालीम की सर्वश्रेष्ठ योजना है। व्यक्ति और समाज के लिए उससे बढ़कर दूसरी योजना आज नहीं हो सकती। दूसरे किसी भी देश में ऐसी तालीम की व्यवस्थित योजना नहीं है। आश्रम-व्यवस्था की अपनी मूलभूत चीज को आज हम खो बैठे हैं।

संस्कृत की उपयोगिता

हमने और भी बहुत सी चीजें खोई हैं। जिनमें से एक संस्कृत भी है। संस्कृत भाषा हमारी बहुत बड़ी कमाई थी, उसे आज हम खो बैठे हैं। मुझे विश्वास है कि अब संस्कृत को फिर से पुनरुज्जीवन प्राप्त होगा। उसके लिए संस्कृत को स्कूलों में अनिवार्य भाषा की तौर पर स्वीकार करने की जरूरत नहीं है। संस्कृत लाजमी न हो, लेकिन लाजमी तौर पर संस्कृत सीखें, तभी संस्कृत में पुनरुज्जीवन आ सकेगा। भारत की भिन्न-भिन्न प्रांतीय भाषाओं का विकास होगा और उन्हें एकत्र कर विचार-विमर्श करने की जरूरत महसूस होगी, तब संस्कृत के बिना नहीं चल सकेगा। राष्ट्रीय एकता के लिए संस्कृत का बड़ा महत्त्व है।

भारत की आध्यात्मिक रचनाओं को पढ़ने के लिए भी संस्कृत सीखनी होगी। आज विदेशों में संस्कृत का जितना अध्ययन चलता है, उतना अध्ययन और दूसरी किसी भी भारतीय भाषा का नहीं चलता। हिन्दी हमारी राष्ट्र-भाषा है, इसलिए उसका भी कुछ-कुछ अध्ययन चलता है। लेकिन संस्कृत का ऐच्छिक तौर पर बहुत ही गहराई से अध्ययन चलता है और वह ऐसा चलता है कि उससे हमें भी प्रकाश मिलता है। हमने अपनी मूर्खता के कारण संस्कृत खो दी। लेकिन मुझे विश्वास है कि वह फिर से अब बहुत जल्दी ही विकसित होगी, क्योंकि वह हमारे अन्तर में पड़ी हुई है।

संस्कृत आयेगी तो वह साथ-साथ हमारी संस्कृति के मुख्य-मुख्य विचारों को भी लायेगी। उसमें आश्रम-व्यवस्था का भी एक स्थान होगा। हिन्दुस्तान को आश्रम-व्यवस्था की खास जरूरत है और दुनिया को भी उसकी सख्त जरूरत है।

नेतृत्व को नयी दिशा देनी होगी

विज्ञान के कारण आज के एक दिन का मूल्य पुराने एक महीने

के बराबर है। इस समय हमें हर चीज का फैसला जल्दी करना होता है। गोआ जैसा छोटा-सा प्रश्न पहले ऐसे ही हल कर दिया जा सकता था, लेकिन आज वही प्रश्न एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। इस समय दुनिया इतनी छोटी बन गयी है कि एक कोने के विचार तत्काल ही सारी दुनिया में फैल जाते हैं। इसलिए छोटे सवाल भी बड़ा रूप ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में हर चीज का जल्दी ही फैसला करने की आवश्यकता ने स्थितप्रज्ञों की अनिवार्यता सिद्ध कर दी है। पहले के जमाने में आध्यात्मिक विकास के लिए स्थितप्रज्ञ की जरूरत थी। लेकिन आज तात्कालिक समस्याओं के समाधान के लिए स्थितप्रज्ञों के नेतृत्व की जरूरत है। अब स्थितप्रज्ञ का नेतृत्व न रहकर अस्थिर बुद्धिवालों का नेतृत्व रहेगा तो दुनिया को भयंकर खतरा है। आज विज्ञान बढ़ गया है, मनुष्य के हाथ में खतरनाक औजार आ गये हैं। इस समय उन्हें इस्तेमाल करनेवाला सावधान पुरुष चाहिए, जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो। मैं मानता हूँ कि प्रज्ञा स्थिर करने की सुन्दर योजना आश्रम-व्यवस्था में निहित है। मन तथा बुद्धि के दोषों को मिटाने के लिए आश्रम-योजना बड़ी ही कारगर साबित हुई थी। अब भी मन की स्थिरता के लिए हमें उसी को फिर से लाना होगा।

सलाहकार कैसा हो ?

मनुष्य के खानगी जीवन में कई प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं। उस समय उसे सलाह की जरूरत होती है। तब उसे माता-पिता, भाई तथा मित्रों की सलाह तो मिलती है, लेकिन गुरु की सलाह नहीं मिलती। एक शिक्षक अपनी जिन्दगी में लगभग हजार विद्यार्थियों को तालीम देता है। लेकिन क्या कभी भी कोई विद्यार्थी अपनी मुसीबत के समय गुरु से सलाह लेता है? इसका अर्थ है कि हमने एक अच्छे सलाहकार को खो दिया। माता-पिता, भाई, मित्र आदि की सलाह भी कीमती होती है। वे भी अपने प्रेमी होते हैं; किन्तु उनमें अपने प्रति एक आसक्ति रहती है। इसलिए उनकी सलाह तटस्थ सलाह नहीं हो सकती। जो हमें प्रेम करता हो, ज्ञानी हो और तटस्थ भी हो, वही सच्चा सलाहकार हो सकता है। ऐसा व्यक्ति शिक्षक ही हो सकता है। शिक्षक में तीन गुणों का समुच्चय होना चाहिए – प्रेम, ज्ञान और तटस्थता।

हम किसी नेता से सलाह लें तो वह नेता ज्ञानी हो सकता है और तटस्थ भी हो सकता है, लेकिन उसकी सलाह में प्रेम नहीं होगा। प्रेम के बिना हम संतुष्ट हो सकेंगे क्या ?

एक बार एक प्रसंग में मीरा को सलाह की जरूरत थी, इसलिए उसने एक संत से सलाह ली। वह संत कौन था, यह तो इतिहासकार ही बतायेंगे। लेकिन शायद वह तुलसीदास या बहुत करके रैदास होगा। मेरे कहने का आशय यह है कि जहाँ माता-पिता, मित्र आदि की सलाह काम नहीं देती, वहाँ संत की सलाह काम देती है। इसलिए तटस्थ पुरुष की, जिसके पास ज्ञान हो, प्रेम हो; सलाह हमें मिले तो बहुत बड़ी बात हो जाती है। शिक्षकों को ऐसे सलाहकार होना चाहिए।

हम अपने बगीचे के लिए अच्छा माली रखते हैं। वह माली बगीचा देख सकता है। लेकिन हमारे व्यक्तिगत जीवन में सलाह नहीं देगा। हम उससे सलाह लेंगे भी नहीं। वैसे ही आज के अच्छे शिक्षक भी अच्छे नौकर हैं। उनकी गुरु की हैसियत नहीं है। कोई भी विद्यार्थी उनसे व्यक्तिगत जीवन में सलाह नहीं लेते।

शिक्षक की जिम्मेवारी

"गुरुमुखी नादम्, गुरुमुखी वेदम्"। नाद और वेद का अपना महत्त्व है। फिर भी वे गुरु के मुख से आते हैं, तभी उनका बहुत महत्त्व होता है। ध्यान से जो तालीम मिलती है, उसे नाद कहा जाता है और शास्त्रों के ज्ञान को वेद कहा जाता है। गुरु के मुँह से ही नाद और वेद का ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। वह ज्ञान देने के लिए गुरु की अपनी भी एक जिम्मेवारी होती है।

आज शिक्षकों की क्या हालत है? वे पढ़ाते हैं, विद्यार्थी आते हैं और उनकी हाजिरी भरते हैं। जो विद्यार्थी उपस्थित होता है, उसे हाजिरी-बही में उपस्थित लिख देते हैं और जो अनुपस्थित होता है, उसे अनुपस्थित लिख देते हैं। शिक्षक यह नहीं सोचते कि जो विद्यार्थी अनुपस्थित हैं, वे क्यों अनुपस्थित हैं? क्या उनके घर में किसी वस्तु का अभाव है? अगर अभाव है तो उसे कैसे समाधान दिया जा सकता है? अगर अभाव नहीं है तो विद्यार्थी क्यों नहीं आता? इस बारे में शिक्षक कुछ सोचते ही नहीं हैं। इसका मतलब है कि वे विद्यार्थियों को नहीं, केवल एक जमात को पुस्तक पढ़ाते हैं। इसलिए उनका विद्यार्थियों से सीधा नजदीक का संबंध नहीं आता।

मुझे पंजाब-सरकार का एक पुराना सर्कुलर याद आ रहा है। जिसमें कहा गया था कि विद्यार्थियों को शिक्षकों के संपर्क से बचना चाहिए और शिक्षकों को विद्यार्थियों के व्यक्तिगत संपर्क में नहीं आना चाहिए, याने जो अपने हैं, उन्हें पराये बनाना चाहिए। भक्त पराये (भगवान) को अपना बनाना चाहते हैं। जिधर देखिये, उधर वे भगवान की मूर्तियाँ खड़ी करते हैं, आरती करते हैं, पूजा करते हैं और उन्हें अपना बनाते हैं। उन्हें अपना बनाने की भूख है और इधर ये शिक्षक अपनों को पराया बनाते हैं। जो साक्षात् ब्रह्म-मूर्ति हमारे सामने है, उसके संपर्क से बचना चाहते हैं! पुराने जमाने में इस तरह के संपर्क से बचा जा सकता था, लेकिन अब नहीं बचा जा सकता। पुराने जमाने में जब हम पढ़ते थे, तब हमारी मातृभाषा मराठी थी, शिक्षकों की मातृ-भाषा भी मराठी थी, लेकिन क्या मजाल कि हम आपस में मराठी में बातचीत करें! हमें अंग्रेजी में बोलना पड़ता था। इस प्रकार शिक्षक और विद्यार्थियों के संपर्क को टालने का एक बड़ा कारण अंग्रेजी था। अब, जब कि मातृ-भाषा में ही शिक्षा दी जाती है, शिक्षकों के संपर्क से विद्यार्थियों को कैसे बचाया जा सकता है?

शिक्षकों की यह दयनीयता

शिक्षकों को विद्यार्थियों के संपर्क से बचाये, ऐसी कौन-सी शिक्षण-पद्धति है? शिक्षकों को उस शिक्षण-पद्धति के खिलाफ बगावत करनी चाहिए। लेकिन अभी शिक्षकों में बगावत करने का साहस कहाँ है? आजकल शिक्षक अपनी तनख्वाह बढ़ाने की माँग करते हैं। वैसे ही, जैसे भंगी और मजदूर अपनी माँग पेश करते हैं। मैं चाहता हूँ कि भङ्गियों को वेतन-वृद्धि की माँग करने के बजाय अपना धन्धा ही मिटाने की माँग करनी चाहिए। मैं भङ्गियों के बारे में भी ऐसे खयाल रखता हूँ तो शिक्षकों के बारे में तो इससे भी अधिक और जोरदार शब्दों में कहना चाहता हूँ कि उन्हें इस तरह की माँग नहीं करनी चाहिए। वे गुरु हैं, अपनी गुरुता का उन्हें स्मरण रहना चाहिए। उन्हें वेतन के बजाय यह शिकायत करनी चाहिए

कि उनका सम्बन्ध विद्यार्थियों से क्यों नहीं रहने दिया जाता? वे अपनी वर्तमान दयनीय हालत से ऊपर उठें, यही मेरी आकांक्षा है।

शिक्षकों के तीन दोष

आजकल बीस-बाइस साल का लड़का बी० ए०, एम० ए० करते ही शिक्षक बन जाता है। उसमें तीन दोष होते हैं:

१—उसका गृहस्थाश्रम चलता है, बाल-बच्चे होते हैं। उन सबकी चिन्ता करनी पड़ती है और उनके निर्वाह के लिए उसे यथेष्ट तनख्वाह नहीं मिलती। इसलिए वह रात-दिन अपनी घर-गृहस्थी की फिकिर में ही पड़ा रहता है। तब वह विद्यार्थियों की चिंता कैसे कर सकता है?

२—वह बिलकुल अनुभवहीन होता है। उसे दुनिया के क्षेत्र में पुरुषार्थ प्रगट करने का अवसर ही नहीं मिलता। इसलिए वह सही तालीम दे भी नहीं सकता। वह वाणिज्य-शास्त्र पढ़ाता है, पर उसमें वाणिज्य करने की अक्ल तो होती नहीं! उसे तीन हजार रुपये देकर आप वाणिज्य करने के लिए भेजिए तो वह दो हजार रुपये गँवाकर लौटता है। मुनाफा तो दूर रहा, मूल पूँजी भी नदारद! तब वह क्या पढ़ा सकता है? वह राजनीति पढ़ाता है, पर उसे राजनीति का क-ख भी मालूम नहीं होता। इसलिए वह इधर-उधर की दो-चार बातें कहकर बड़े-बड़े नेताओं की मात्र निन्दा करता है या ज्यादा से ज्यादा स्तुति करता है।

३—शिक्षक जवान होता है, वह अपने विकारों पर काबू नहीं पाया हुआ होता है।

ऐसे त्रिदोषग्रस्त मनुष्य को शिक्षक बना देने से तालीम कैसे चलेगी? इसलिए अगर हमें यशस्वी तालीम की योजना करनी है तो शिक्षकों को वानप्रस्थी होना चाहिए।

शिक्षक क्या करें?

शिक्षक विद्यार्थी का पूरा भक्त बने और विद्यार्थियों को यह महसूस होना चाहिए कि यह हमारे ही लिए खा रहा है, पी रहा है, सो रहा है और सभी कुछ कर रहा है। हमारे जीवन के साथ ओतप्रोत है। जब विद्यार्थी शिक्षक के बारे में ऐसा अनुभव करेंगे और शिक्षक विद्यार्थियों को अपने जीवन के अनुभवों के प्रकाश में शिक्षा देगा, तभी इन्द्रिय-निग्रह और विवेक के बारे में विद्यार्थी समझ सकेंगे।

आप तो शिक्षक बन ही चुके हैं। इसलिए मैं आपको क्या सलाह दूँ? आप नौकरी करना चाहते हैं और शिक्षक की प्रतिष्ठा भी रखना चाहते हैं तो आपको इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास करना चाहिए। जो परिपक्व हैं, उन्हें तो करना ही चाहिए, लेकिन आप में से जो जवान हैं, उनको भी इसका अभ्यास करना चाहिए। विषय-वासनाग्रस्त मनुष्य शिक्षक होने का अधिकारी नहीं हो सकता।

जवानों की शक्ति

जवानों में विषयासक्त होने की जितनी शक्ति होती है, उतनी ही शक्ति विषय-वासना को वश में करने की भी होती है। किसी एक उदात्त आदर्श के लिए विषय-वासना से मुक्त हुए जितने जवान मिलेंगे, संभवतः उतने वानप्रस्थ भी नहीं मिलेंगे। उचित ध्येय की प्राप्ति के लिए एक मस्ती होती है। वह मस्ती प्रौढ़ों में दुर्लभ है।

आज के समाज में विषय-वासना के लिए, मुक्ति के लिए सामाजिक मान्यता है। इस समय जनसंख्या ज्यादा है, जमीन कम है और सन्तान-वृद्धि के लिए सामाजिक प्रेरणा नहीं है। इसलिए जवानों के सामने वासना-निवृत्ति का सामाजिक आदर्श है। परन्तु उसके अनुरूप परिस्थिति नहीं है। ये सिनेमा चल रहे हैं। इनसे वातावरण बहुत दूषित होता है। जवानों को संयम की प्रेरणा नहीं मिलती। सरकार भी इन सिनेमाओं को रोकती नहीं है। सिनेमाओं को रोकना सरकार अपने विधान के खिलाफ समझती है। लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि विधान ऐसी कौन सी बला है कि हम उसे बदल नहीं सकते। सिनेमा और गन्दे साहित्य के कारण इन्द्रिय-निग्रह के लिए परिस्थिति अत्यन्त प्रतिकूल बन गयी है। लेकिन आज हिन्दुस्तान में इन्द्रिय-निग्रह के लिए जो सामाजिक उत्तेजना है, उसका लाभ लेकर जवानों को जनहित के कामों में, सर्वोदय के कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिए।

गान्धीजी का ब्रह्मचर्य सेवाचर्य था। उन्होंने जब 'एम्ब्यूलेन्स कोरम' निकाला, तब वे ब्रह्मचर्य के बारे में बहुत चिन्तन करते थे। उस समय उन्हें लगा कि यदि मैं ब्रह्मचर्य का पालन न कर परिवार की चिन्ता में ही पड़ा रहूँगा तो यह सेवाकार्य नहीं कर सकूँगा। गांधीजी की तरह ही जवानों के सामने आज एक उदात्त ध्येय उपस्थित है। जवानों को राष्ट्र-निर्माण का एक बहुत बड़ा कार्य करना है। दो हजार वर्षों के बाद अब भारत को अपने ढंग का रूप देने का मौका मिला है। इसलिए वे जवान, जो कि शिक्षक हैं, संयम से रहेंगे तो उनके काम की प्रतिष्ठा बढ़ेगी।

पंजाब के शिक्षक

पंजाब को बहुत कष्ट सहना पड़ा। फिर भी यहाँ के लोग उसे नजरन्दाज कर आज भी यह भजन गाते हैं कि "ना कोई बैरी नाहि बिगाना"। पंजाब के जवानों में बहुत बड़ी निष्ठा है। यहाँ के लोग मार खाने के और हिम्मत न हारने के आदी हैं। इसलिए यहाँ की शक्ति का उपयोग आप शिक्षक लोग कर सकें तो बहुत बड़ा काम होगा। आप गाँव-गाँव में जाते हैं, इसलिए सभी गाँववालों के सामने वेद, उपनिषद्, गीता, गुरुवाणी आदि रखिये और कहिये कि वे पंथ, धर्म और पक्ष के झगड़े में न पड़ें। मुझे विश्वास है कि आप आज के झगड़ों से बचाने तथा पंजाब की ताकत को एक बनाने में कामयाब होंगे।

♦♦♦

सेवा की शर्त

ग्राम में जाना चाहिए, यह तो समझ में आने लगा है, पर ग्रामीण बनना चाहिए, यह मन में उतना जमा नहीं है। यह वैसी ही बात हुई कि झोपड़ी में तो जाना है, किन्तु ऊँट से उतरना नहीं है। मैं गाँव में जाऊँगा शहर का ठाठ-बाट लेकर। इसका मतलब—गाँव को शहर बना दूँगा। इसी मतलब से गाँव में जाना हो तो न जाना ही अच्छा है।

चाकरी की शर्त है—शिव बनकर शिव को पूजना। किसान की चाकरी किसान बनकर ही की जा सकती है। ♦♦♦

स्वागत-प्रवचन

पठानकोट (पंजाब) २०-५-'५९

पठानकोट को सर्वोदय-नगरी बनाने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयत्न करें

अभी हम सिकन्दर का वह स्थान देख आये, जहाँ से उसे लौटना पड़ा था। सिकन्दर और पोरस की मुठभेड़ हुई। उसमें पोरस हारा। क्योंकि ग्रीस के सैनिक युद्ध-कला में प्रवीण थे। फिर भी पोरस का पराक्रम देखकर सिकन्दर की सेना ने भारत में आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। सिकन्दर पटना तक जाना चाहता था। उस समय भारत का सम्राट् पटना में रहा करता था। वह उस सम्राट् को जीतकर अपने आपको विश्व-विजयी कहलाना चाहता था। किन्तु वह पंजाब से पार नहीं पा सका।

विश्व-विजय का तरीका

पंजाब से पार पाये नामदेव। नामदेव महाराष्ट्र के थे। वे सन्त थे। घूमते हुए इस सूबे में आ पहुँचे। यहाँ उन्होंने पंजाबी भाषा का अध्ययन किया और अपनी भक्ति-भावना को कविता में अभिव्यक्ति दी। नामदेव से १५० साल के पश्चात् गुरु नानक हुए और उनके १५० साल बाद गुरु अर्जुनदेव ने गुरु ग्रन्थसाहब में भजनों का संग्रह किया। उसमें नामदेव की वाणी को भी शामिल किया। इससे आप समझ सकते हैं कि नामदेव यहाँ कितने लोकप्रिय हो चुके थे। महाराष्ट्र से इतनी दूर आना, यहाँ की भाषा सीखना, यहाँ की भाषा में ही भजन लिखना और भजनों को इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त होना कि वे गुरु ग्रन्थसाहब में शामिल किये जायँ, इसीसे दुनिया को जीतने का तरीका समझा जा सकता है। सिकन्दर का तरीका असफल भी हो सकता है, लेकिन नामदेव के तरीके को असफल होने की कोई भी गुंजाइश नहीं है।

शस्त्र : भय के कारण

बिल्ली जब चूहे पर आक्रमण करती है तो लगता है कि मानो सिकंदर का हमला हो रहा है। लेकिन वही बिल्ली कुत्ते का दर्शन होते ही दुम दबाकर भाग जाती है। इस तरह बिल्ली की बहादुरी तथा बुजदिली का दोहरा दर्शन होता है। जैसे दाँत और नाखून बिल्ली के पास हैं, वैसे दाँत और नाखून चूहे के पास नहीं हैं। इसलिए वह चूहे पर हमला करती है। कुत्ते के पास उससे बेहतर नाखून हैं, इसलिए वह उसे देखते ही भाग जाती है। हिंसा के औजार रखनेवाला तभी तक बहादुर होता है, जब तक कि सामनेवाले के पास कमजोर औजार होता है। लेकिन जब सामनेवाले के पास बड़ा औजार आ जाता है तो वह बुजदिल बन जाता है। जिसका सारा दारोमदार शस्त्रों पर है, वह कभी भी निर्भय नहीं बन सकता। निर्भय होने के लिए शस्त्र-संन्यास आवश्यक है।

गत महायुद्ध में दस-पन्द्रह लाख जर्मन सिपाहियों ने एक-दम दो-चार देशों पर हमला कर दिया। तब वे कितने बहादुर मालूम हुए थे! लेकिन जब अमेरिका और ब्रिटेन सामने आये और जर्मनों ने देखा कि उनके पास हमसे भी बेहतर औजार हैं तो वे उनकी शरण चले गये। इसलिए आप शस्त्रों पर भरोसा करके निश्चिन्त नहीं हो सकते।

कमजोरी के प्रतीक : ये गहने !

स्त्रियों के हाथ में शस्त्र नहीं हैं, किन्तु गहने हैं, गहनों ने बहनों को डरपोक बनाया है। हम चाहते हैं कि बहनें डरपोक न रहें। इसलिए बहनों को सारे गहने फेंक देने चाहिए और पं० नेहरू से कहना चाहिए कि आप अपने देश के काम में इनका उपयोग करना हो तो कीजिये। हमारे लिए ये गहने बिलकुल काम के नहीं हैं। स्त्रियाँ गहने छोड़ें तो वे निर्भय हो सकती हैं। मैंने स्त्रियों से अहिंसक क्रांति में अग्रसर होने की अपील की है। मुझे आशा है कि वे इस ओर ध्यान देंगी। बहनों में स्वभावतः करुणा होती है, दया होती है, सात्त्विक वृत्ति होती है। इसलिए उनके ये गुण प्रकट होने चाहिए और समाज को उनका लाभ मिलना चाहिए।

भक्ति के साथ गुणविकास

परमेश्वर सत्य स्वरूप है, मंगलमय है, निर्भय और निर्वैर है। हम परमेश्वर की उपासना करते हैं, लेकिन परमेश्वर के गुण हम में नहीं आते हैं तो समझना चाहिए कि हमारी उपासना बेकार गयी। गुरु नानक ने कहा कि 'बिनु गुण कीते भगति न होई'। जब तक हम उन गुणों को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक भक्ति नहीं हो सकती। लोग समझते हैं कि भक्ति के लिए तबला, हारमोनियम आदि साधन चाहिए। लेकिन वह धारणा गलत है। भक्ति के लिए वे बाह्य साधन नहीं, बल्कि गुणविकास चाहिए। गुणमय भगवान की उपासना करके जब तक हम उन गुणों के अंश प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक भक्ति नहीं हो सकती।

मैं क्या चाहता हूँ ?

गुरु नानक ने "निर्भय निर्वैर" कहा है। पठानकोट में निर्भयता और निर्वैरता के अधिष्ठान पर समाज बना सकें तो बड़ा सुन्दर हो। मैं पठानकोट को निर्भय और निर्वैर गुण से समन्वित सर्वोदय-नगर के रूप में देखना चाहता हूँ।

अब मैं कश्मीर जा रहा हूँ। वहाँ से लौटकर वापस पंजाब आने की मेरी इच्छा तो है, लेकिन उस इच्छा को पूरा करना न करना ऊपरवाले पर निर्भर करता है। सच तो यह है कि मैंने अपनी कोई इच्छा, मंशा नहीं रखी है। मैं चाहता हूँ कि ऊपरवाले की मंशा पूरी हो। उसी में मुझे समाधान है। इसलिए अगर उपरवाले ने चाहा तो मैं दुबारा यहाँ आऊँगा, उस समय मुझे सर्वोदय-नगर बना हुआ दिखाई देना चाहिए। ◆◆◆

[इस लेख का पूर्वांश अंक ६६ के पृ० ४७२ पर प्रकाशित है।-सं०]

अनुक्रम

१. यदि शिक्षक सेवा का व्रत लेकर काम करें....
पठानकोट २० मई '५९ पृष्ठ ४७३
२. पठानकोट को सर्वोदय-नगरी बनाने...
पठानकोट २० मई '५९ " ४७६

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।